प्रथम अध्याय

वर्ण व्यवस्था का उद्‌भव –

वर्ण व्यवस्था का उद्‌भव कैसे और किन परिस्थितियों में हुआ, यह विचारणीय विषय है। वर्ण शब्द का प्रयोग रंग के अर्थ में होता था और प्रतीत होता है कि आर्य लोग गौर वर्ण के थे और मूलवासी लोग काले रंग के थे। सामाजिक वर्ग–विन्यास में रंग से परिचायक चिह्न का काम लिया गया, लेकिन रंगभेददर्शी पश्चिमी लेखकों ने रंग की धारणा को बढ़ाचढ़ा कर प्रस्तुत किया है। वास्तव में समाज में वर्गों के सृजन का सबसे बड़ा कारण हुआ आर्यों की मूलवासियों पर विजय। आर्यों द्वारा जीते गए दास और दस्यु जनों के लोग दास और शूद्र हो गए। जीती गयी वस्तुओं में कबीले के सरदारों और पुरोहितों को अधिक हिस्सा मिलता था और वे सामान्य लोगों को वंचित करते हुए अधिकाधिक सम्पन्न होते गए, इससे कबीले में सामाजिक असमानता का सृजन हुआ। धीरे–धीरे कबायली समाज तीन वर्गों में बंट गया– योद्धा, पुरोहित और सामान्य लोग (प्रजा)। चौथा वर्ग, जो शूद्र कहलाता था, ऋग्वेद काल के अन्त में दिखाई पड़ता है, क्योंकि इसका सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद के दशम् मंडल में है, जो सबसे बाद में जोड़ा गया है।

ऋग्वेद के प्रारम्भिक चरणों में वर्ण–व्यवस्था जैसी कोई संस्था नहीं थी।[1] उस समय दो वर्ण थे– आर्य और आर्येत्तर (दास–दस्यु) प्रथम मण्डल में अगस्त

[1] त्सिमर ने इस मत का प्रतिवाद किया है कि ऋग्वेद का सृजन ऐसे समाज में हुआ था जो वर्ण–व्यवस्था से परिचित था। वैदिक इण्डेक्स, पृ0 275 (अनु0)

ऋषि द्वारा दो वर्णों की कामना किये जाने का उल्लेख है।[2] आगे चलकर यह भी कहा गया है कि इन्द्र ने दस्युओं का वध करके आर्य वर्ण की रक्षा की, और दास वर्ण को अन्धकार में रखा।[3] यही आर्य वर्ण आगे चलकर तीन भागों में विभाजित हुआ– ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य। साथ ही दस्युओं–दासों अर्थात अनार्यों को शूद्र वर्ण के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया। ऋग्वेद में एक स्थान पर कहा गया है कि इन्द्र ने दासों को आर्य वर्ण में परिवर्तित किया।[4]

ऋग्वेद के दशम मण्डल के 'पुरुषसूक्त''[5] में एक मात्र ऐसा सूक्त है जहाँ चतुर्वर्णों का उल्लेख होता है। उसमें कहा गया है ब्राह्मण परम पुरुष के मुख से, क्षत्रिय उसकी भुजाओं से, वैश्य उसकी जाँघों से तथा शूद्र उसके पैरों से उत्पन्न हुए।

इस प्रकार इसमें चारों वर्णों के क्रम, उनकी दैवी उत्पत्ति तथा उनकी उच्चता–निम्नता भी प्रकट हैं। वैदिक काल के पूर्व युग में ही वर्णों का समाज एकत्रित होने लगा। आर्य और अनार्य (दास) के रूप में प्रधान प्रतिस्पर्धी वर्ग सामने आ चुके थे। दोनों वर्ग परस्पर विरोधी रूप में आगे बढ़े। उत्तर वैदिक काल तक आते–आते आर्य और अनार्य का विरोध और द्विवर्ण की समानता समाप्त सी हो गयी। इनके स्थान पर चातुर्वर्ण का उल्लेख प्रारम्भ हो गया।[6] यद्यपि ऋग्वेद के दशम् मण्डल के पुरुषसूक्त में चारों वर्णों का उल्लेख अवश्य हुआ है, किन्तु उस मण्डल की प्राचीनता उतनी नहीं है जितनी ऋग्वेद के अन्य मण्डलों की है।

---

[2] उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष। ऋग्वेद, 1/17/96
[3] ऋग्वेद, 3/34/9, यो दासं वर्णमधरं गुह्य कः वही, 2/12/4
[4] ऋग्वेद, 6/22/10
[5] ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः। ऊरूतदस्य यद्वेश्यः पद्भयां शूद्रोऽजायत्।।
[6] अथर्ववेद 3,5,7 : शतपथ ब्राह्मण 55.49

पूर्व वैदिक काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय और विश् इन तीनों के उल्लेख मिलते हैं, यद्यपि इनके साथ भी वर्ण शब्द नहीं प्रयुक्त हुआ है, जो यह सांकेतिक करता है, कि अभी ये वर्ग भी निश्चित आधारों पर एक–दूसरे से अलग नहीं हो पाये थे, केवल अलग होने की प्रक्रिया में थे। चारों वर्णों का सर्वप्रथम एकत्र उल्लेख ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में मिलता है किन्तु यहाँ भी उनके साथ वर्ण शब्द का प्रयोग नहीं मिलता है। यहाँ सम्पूर्ण मानव समाज की, कल्पना एक विराट पुरुषके रूप में की गयी है और यह कहा गया है कि ब्राह्मण उस विराट पुरुष का मुख है, भुजाएं क्षत्रिय हैं, उरु वैश्य है तथा उसके पैरों से शूद्र उत्पन्न हुआ।

आर्यों ने समाज के जिन विभिन्न समूहों अथवा वर्गों का निर्माण किया उनमें उनके गुण के साथ–साथ उनके प्रधान कर्म को भी महत्व दिया गया। इस प्रकार वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न वर्णों अथवा समूहों को उनके प्रधान गुण और कर्म के आधार पर विभाजित किया गया तथा उनके कर्मों को प्रबल रूप से व्यवस्थित किया गया।

प्राचीन धर्मशास्त्रों में वर्णों की उत्पत्ति ईश्वरकृत एवं दैवी मानी गई। इसे परम्परागत सिद्धान्त भी कहा गया। इस सिद्धान्त के अनुसार वर्णों की उत्पत्ति ईश्वरकृत है।। ऋग्वेद के दशम् मण्डल के पुरुषसूक्त में वर्ण सम्बन्धी वर्णों की उत्पत्ति विराट पुरुष से हुई।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।

उरूतदस्य यद्वेश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत्।।[7]

[7] ऋग्वेद 10.9.12

मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, उरु (जाँघ) से वैश्य तथा (पैर) से शूद्र उत्पन्न हुए। यह सृष्टिकर्ता हजार सिर, हजार आँखों और हजारों पैर वाला था, जो भूत और भविष्य दोनों था और जिससे सृष्टि की उत्पत्ति हुई थी।[8]

सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात।

पुरुष एवेद सर्वं यद्भूतं यच्चभव्यम्।।

यह भारतीय साहित्य में चार वर्णों का प्रथम उल्लेख है और यहाँ भी शूद्र वर्ण का स्थान अन्य वर्णों की तुलना में निम्नतम है। इससे स्पष्ट होता है कि इस मंत्र में तीन उच्च वर्णों ब्राह्मण, राजन्य और वैश्य को जो विराट पुरुष के अभिन्न अंग बताये गये हैं, किन्तु शूद्र की उसके पैरों से उद्भूत माना गया है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि पुरुषसूक्त के संकलन कार्य के पहले ही शूद्र वर्ण आस्तित्व ग्रहण कर चुका था और समाज में उनकी निम्नतम स्थिति मान्य हो चुकी थी। पुरुषसूक्त का संकलन–समय अथर्ववेद के संकलन काल में निर्धारित किया गया है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि पूर्व वैदिक काल में चातुर्वर्ण्य–व्यवस्था के स्थान पर मात्र त्रैवर्णिक व्यवस्था थी।

चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का उल्लेख अवेस्ता में भी हुआ है। प्राचीन ईरानी समाज अथर्व (पुरोहित), रथेष्ठ (योद्धा), वास्त्रीय फ्शोयन्त (परिवार के मुखिया) तथा हुइती (श्रमिक) में विभाजित था। किन्तु अधिकांश विद्वान् यह मानते हैं कि ईरानी समाज का वर्ग–विभाजन उत्तरकालीन है, और उसका आधार भारतीय आर्यों की वर्णव्यवस्था है।[9]

---

[8] वही 10.90.12.1

[9] दे मजूमदार, आर0सी0 कार्पोरेट लाइफ इन एन्शीयेन्ट इण्डिया, कलकत्ता 1920.

यह कहा जा सकता है स्वयं ईश्वर ने ही वर्णों का उद्‌भव किया और उनकी स्थिति निर्धारित की। चातुर्वर्ण व्यवस्था का प्राचीनतम उल्लेख है। यहाँ सम्पूर्ण सामाजिक संगठन एक शरीर के रूप में कल्पित किया गया है, जिसके विभिन्न अंग समाज के विविध वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ब्राह्मणों की उत्पत्ति मुँह (वाणी) का स्थान है। अर्थात् शिक्षा और विद्या प्रदान करना। क्षत्रियों को बाहु (भुजायें) शौर्य एवं शक्ति की प्रतीक हैं, अतः क्षत्रिय का कार्य हथियार ग्रहण करके मानव जाति की रक्षा करना है। वैश्य पुरुषों की जाँघ से उत्तपत्ति के कारण उनका प्रमुख कार्य समाज की आर्थिक अवस्था सुदृढ़ करना था। कृषि, पशुपालन और वाणिज्य से वे समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। पैर शरीर का भारवाहक है। अतः शूद्र की उत्पत्ति समाज का भारवहन करने अर्थात अन्य वर्णों की सेवा करने के निमित्त हुई है। ऋग्वेद की वर्णविषयक अवधारण श्रम–विभाजन के सिद्धान्त पर आधारित है, जिसमें प्रत्येक वर्ण के कार्य का महत्व है। इस वर्ण–व्यवस्था को दैवी इसलिए कहा गया, कि इससे सम्बद्ध वर्ण ईश्वर के भय से अपने–अपने वर्ण के अन्तर्गत रहें तथा इस नियम को तोड़ने का प्रयत्न न करे।

दैवी सिद्धान्त के रूप में वर्ण व्यवस्था के उद्‌भव का वर्णन महाभारत में भी किया गया है। महाभारत में विराट् पुरुष के स्थान पर ब्रह्म की कल्पना की गयी है, तथा उसके विविध अंगों से चारों वर्णों की उत्पत्ति बताई गयी है। शान्तिपर्व के अन्तर्गत यह उल्लेख प्राप्त होता है कि ''ब्रह्म के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं (बाहु) से क्षत्रिय, उरु (जंघा) से वैश्य और तीनों वर्णों की सेवा के लिए पैर से शूद्र की रचना हुई।

ब्राह्मणों मुखतः सृष्टे ब्राह्मणो राजसत्तम।

बाहुभ्यां क्षत्रीयः सृष्ट उरुभ्यां वैश्य एवं च।।

वर्णानां परिचार्यार्थ त्रयाणां भरतर्षभ।

वर्णश्चतूर्थः संभूत पद्भ्यां शूद्रो विनिर्मितः।।[10]

गीता में भगवान श्रीकृष्ण का कथन है कि चारों वर्णों की सृष्टि मैंने गुण और कर्म के आधार पर की है तथा मैं ही उसका कर्त्ता और विनाशक हूँ।

चातुर्वण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।

तस्य कर्तारमपि मां विद्ध् यकर्तारमव्ययम्।।[11]

मनुस्मृति तथा पुराण भी वर्ण–व्यवस्था की दैवी उत्पत्ति के सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं। मनु के अनुसार ब्रह्मा ने लोकवृद्धि के लिए मुख, बाहु, उरु तथा पैर से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की सृष्टि की।

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थ मुखबाहरुपादतः।

ब्राह्मणं क्षत्रीय वैश्यं शूद्रं च निरवर्त्तयत्।[12]

पुराणों में वर्णों का उद्भव ईश्वरीय माना गया है। विष्णु पुराण में वर्ण व्यवस्था की दैवी उत्पत्ति को स्वीकार करते हुए बताया गया है कि भगवान विष्णु के मुख, बाहु, जंघा तथा पैर से चारों वर्णों की उत्पत्ति हुई।[13]

---

[10] महाभारत, शा0प0,– 122.4–5
[11] गीता, 4, 13
[12] मनु0, 1.31
[13] विष्णु पुराण, 1.12 63–64

त्वन्मुखात् ब्राह्मणास्त्वत्तो बाहोः क्षत्रमजायत।

वैश्यास्तवोरुजाः शूद्रास्तव पद्भ्यां समुद्गताः।।

मत्स्य पुराण में भी इसी प्रकार का वर्णन है।

वामदेवस्तु भगवानसृजन्मुखतो द्विजान्।

राजन्यान्सृजदबाहो र्विटशूद्रानुरुपादयोः।।[14]

वायु और ब्रह्मांड पुराणों से भी यही परिलक्षित होता है कि चतुर्वर्णों की उत्पत्ति ब्रह्मा से हुई है।[15]

वायुपुराण में क्षत्रिय वर्णों को ब्रह्मा के बाहु से उत्पन्न न मानकर वक्ष से उत्पन्न माना गया है।

वक्त्रादस्य ब्राह्मणाः सम्प्रसूता यद्वक्षतः क्षत्रीया पूर्वभागे।

वैश्याश्चोरोर्यस्य पद्भ्यां च शूद्राः सर्वे वर्णा गात्रतः संप्रसूता।।

2. गुण का सिद्धान्त –

वर्ण व्यवस्था के उद्भव में गुणों की भी अभिव्यक्ति मानी गयी है। मनुष्य अपने गुणों से महान होता है। प्रकृति में तीन प्रकार के गुण सत्व, रज और तम बताए गए हैं।

सत्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः।

[14] मत्स्य पुराण, 4.28
[15] ब्रह्मांड पु0, 1.5.108

जिस व्यक्ति में सत्व रज की प्रधानता होती है वह शांति का जीवन व्यतीत करना चाहता है। जिसमें रजोगुण की प्रधानता होती है वह लालची होता है, और बहुत इच्छाएं करता है। जिसमें तमो गुण प्रधान होता है वह आलसी और लापरवाह होता है। इसमें कुछ गुण वंशानुगत होते हैं और कुछ गुण प्रत्येक व्यक्ति को वातावरण से मिलते हैं। इन गुणों से ही प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव बनता है। उसके स्वभाव के अनुरूप ही उसके कर्म निश्चित किये गये हैं। सत्वगुण अधिक स्वच्छ निर्मल होने के कारण प्रकाश देने वाला और दोषरहित संसारिकता से विमुक्त करने वाला होता है। इससे व्यक्ति को सुख और ज्ञान का प्रकाश मिलता है। इस गुण के कारण मनुष्य अपनी उच्च स्थिति बना लेता है तथा अन्य लोगों से पूर्णतः अलग दिखता है। जिससे मनुष्य शांति का जीवन बिताता है। रजोगुण से प्रेरित होकर मनुष्य कामना और आसक्ति से उत्पन्न ज्ञान, वह इस जीवात्मा को कर्मों और उनके फल के सम्बन्ध से बांधता है। सत्व गुण की तुलना में रजोगुण निम्न है क्योंकि यह मनुष्य को भौतिक और सांसारिक सुख की ओर आकृष्ट करता है तथा उसे बंधन से आबद्ध करता है। तमोगुण से अज्ञान की सृष्टि होती है। जब अज्ञान का प्रभाव होता है तब भ्रम, आलस्य, प्रमाद, निद्रा आदि का उदय होता है और मनुष्य उसमें बंध जाता है। अतः सत्व गुण सुख का, रजस गुण कर्म का और तमस गुण अज्ञान का द्योतक माना गया है।

तत्र सत्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।

सुखस◌न बध्नाति ज्ञानस◌न चानध।।

रजोरागात्मकं विद्धि तृष्णास◌समुद्भवम्।

तत्रिबध्नाति कौन्तेय कर्मस◌न देहिनम्।।

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्।

प्रमादालस्यनिद्राभिस्तान्निबध्नाति भारत।।

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत।

ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सं×जयत्युत।।[16]

वैश्य के कर्म उसकी मनोवृत्ति को ध्यान में रखकर कृषि और व्यापार निर्धारित किये गए। शूद्र की मनोवृत्ति के अनुसार उसका प्रमुख कर्तव्य अन्य तीन वर्णों की सेवा करना निश्चित किया गया।[17] जिसमें सत्वगुण था वह ब्राह्मण माना गया। जिसमें रजोगुण था वह क्षत्रिय, जिसमें रजस और तमस दोनों गुणों का सम्मिश्रण था वह वैश्य तथा जिसमें तमोगुण था वह शूद्र माना गया। यह वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति का गुणात्मक सिद्धान्त था। सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। सत्वगुण ज्ञान–सम्बन्धित रजोगुण राग–द्वेष युक्त तथा तमोगुण प्रतिकूल ज्ञान से युक्त था।

सत्वं राजस्तमश्चैव त्रीन्विधादात्मनोगुणान्।

यैर्व्याप्येमान्स्थितोभवान्महान्सर्वान शेषतः[18]

सात्विक गुण का लक्षण था। वेदों का अभ्यास, तप, ज्ञान, शौच (शुद्धि)। इन्द्रिय संयम और आत्मा का चिंतन ये समस्त कार्य ब्राह्मण के थे।

---

[16] गीता, 14.6.9
[17] वही 18, 41–44
[18] मनु0, 12.24

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानंशौचमिन्द्रियनिग्रहः धर्मक्रियात्मचिन्ताच सात्विकगुण लक्षणम्ः।[19]

दुःख युक्त, अप्रीतिकारक तथा शरीर का विषयों की ओर आकृष्ट करना रजोगुण सम्बन्धित था।

यत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः।

तद्रजोऽप्रतिघं विद्यात्सततं हारि देहिनाम्।।[20]

जोकि शौर्य, साहसिक कार्य, शासन प्रजा रक्षा आदि क्षत्रियों का प्रधान कर्तव्य है। जो मोह युक्त हो जिसके विषय का आकार स्पष्ट हो वह तमोगुण माना गया है।

यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम्।

अप्रतर्क्यमिविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत्।।[21]

लोभ, निद्रा मांगने का स्वभाव और प्रमाद ये तामस गुण के लक्षण हैं। वैश्यों में राजस और तामस दोनों गुणों का सम्बन्ध था तथा शूद्रों में तामस गुण की प्रधानता थी।

त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां यः फलोदयः।

अग्रयोमध्यो जघन्यश्च तं प्रवक्ष्याभ्यशेषतः।।[22]

वर्ण व्यवस्था का स्वरूप बहुत कुछ इन गुणों के आधार पर था। विभिन्न गुणों में विभिन्न वर्गों का जन्म दिया। सत्व, रज, और तम गुण क्रमशः उत्तम, मध्यम

---

[19] वही, 12.31
[20] वही, 12.28
[21] वही, 12.29
[22] वही, 12.30

और निम्न फलदायक माने गये। इस प्रकार ब्राह्मण उत्तम गुण सम्पन्न, क्षत्रिय मध्यम, वैश्य मध्यम और अधम गुणों से तथा शूद्र निम्नतम गुण युक्त बताया गया। विष्णु पुराण के अनुसार कि सत्वगुण से युक्त ब्राह्मण, रजगुण से सम्बन्धित क्षत्रिय, रज और तम गुण से वैश्य तथा केवल तम गुण से शूद्र ब्रह्म की संतान हैं।

अजायन्त द्विजश्रेष्ठ सत्वोद्रिका मुखात्प्रजा।

वक्षसोरजसोद्रिक्तास्तथा वै ब्रह्णोऽभवन्।।

रजसा तमसा चैव समुक्तिास्तथोरुतः।

पद्भ्यामन्याः प्रजा ब्रह्म ससर्ज द्विजोत्तम।

तमः प्रधानास्ताः सर्वश्चातुर्वर्ण्यमिदं ततः।।[23]

कर्म सिद्धान्त –

वर्ण व्यवस्था में कर्म का बहुत योगदान रहा जिसमें वैदिक युग के शुरू में ही जो लोग विद्या, शिक्षा यज्ञ इत्यादि धार्मिक रूचि रखते थे, वे ब्राह्मण वर्ग कहलाये। इनका मुख्य कर्म अध्ययन, अध्यापन, याजन और तप था। जो वर्ग राज्य–व्यवस्था में सहयोग देते थे और जिनका प्रधान कर्म देश की रक्षा करना था। वे क्षत्रिय वर्ग कहलाये। जिसका पशुपालन, कृषि, तथा व्यापार प्रधान कर्म था वह वैश्य कहलाये। तीनों वर्णों की सेवा करना शूद्र वर्ण का कर्तव्य कहा गया। इस प्रकार वर्णों के ये प्रधान कर्म थे जिससे समाज में चार वर्णों का निर्माण किया गया और कर्म को एक सामाजिक व्यवस्था प्रदान किया। इस

[23] विष्णु पु0 1.6 4–5

वर्गगत कर्मों को वर्णधर्म कहा गया जो अपने –अपने सामाजिक दायित्वों का निर्वहन करते थे। ऋग्वेद के काल में प्रथम चरण में आर्य और अनार्य (दास) ये दो वर्ग अथवा वर्ण थे। दोनों का विभाजन व्यावहारिक, कर्म सिद्धान्त था। दोनों के कार्य अलग–अलग थे। ऋग्वेद में एक स्थान पर कहा गया है कि समस्त विश्व को आर्य बनाओ।[24] अच्छे कर्म करने वाले आर्य और बुरे कर्म में लिप्त होने वाले अनार्य (दास)। आर्य और (दास) अनार्य का भेद विचारात्मक था। बौद्ध ग्रन्थ 'मञ्झिम निकाय' में कहा गया है– 'हे आश्वलायन क्या तुम जानते हो कि यवन, कम्बोज और दूसरे निकटवर्ती देशों में आर्य और अनार्य (दास) दो ही वर्ण होते हैं। दास आर्य हो सकता है और 'आर्य' (दास)।[25] इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि कोई भी व्यक्ति कर्म से अनार्य (दास) और कर्म से ही आर्य हो सकता है। समाज में चार वर्णों का विभाजन कर्म पर आधारित था तथा चारो वर्णों की भिन्न–भिन्न वृत्तियाँ निर्धारित की गयी थी। प्रत्येक व्यक्ति की वृत्ति उसके गुण युक्त कर्म को उत्पन्न करती है। यह वर्ण व्यवस्था सामाजिक व्यवस्था है जिसमें इनके आधार पर समूहों का विभाजन किया गया। ये वृत्ति गुणयुक्त कर्म से सम्बन्धित है। महाभारत में उल्लेख हुआ है कि ''समाज में सर्वप्रथम केवल ब्राह्मण ही थे। बाद में अपने कर्तव्यों की विभिन्नता के कारण समाज में कई वर्ण हो गए।

नविशेषोऽस्ति वर्णानासर्वबह्ममिदंजगत्।

ब्रह्मणापूर्वसृष्टंहिकर्मभिवर्णतांगतम्।[26]

---

[24] ऋग्वेद, 9.63.5, कृष्वन्तो विश्वम् आर्यम्।

[25] मञ्झिम निकाय, 93.6

[26] महाभारत, शान्तिपर्व, 188.10

सत्य, धर्म, नैतिकता और सदाचार जैसे कर्मों का पालन करने वाले ब्राह्मण थे।[27] काम और भोग, तीक्ष्ण, क्रोधी स्वधर्मत्यागी साहसिक क्षत्रिय थे।

कामभोगप्रियास्तीक्ष्णांक्रोधनाः प्रियसाहसा।

त्यक्तस्वधर्मारक्तागास्तेद्विजः क्षत्ततां गता।।[28]

स्वधर्मच्युत, पशुपालन में लिप्त पीत वर्ण वाले वैश्य थे।[29] हिंसाप्रिय, भ्रष्ट कृष्ण वर्ण वाले शूद्र थे।[30]

इस प्रकार वर्णव्यवस्था में एक समूहों का उदय हुआ तथा कर्म अनुसार उनका विकास प्रारम्भ हुआ। इस सम्बन्ध में एक कथा का उल्लेख है कि ''कौशिक ऋषि ने एक अत्यन्त विद्वान ज्ञानी व्याध को मांस–विक्रय करते हुए देखकर उससे पूछा कि वह क्यों मांस विक्रय कर रहा है। इस प्रश्न का उत्तर देते हुए व्याध ने कहा – ''हे द्विज (ब्राह्मण) मैं अपने वर्ण का कर्म कर रहा हूँ। अतः मैं अपने उस धर्म का पालन कर रहा हूँ जिसके लिए ब्राह्मण ने मुझे उत्पन्न किया है। धर्म के अनुसार कर्म का कार्य करके ही अपने उच्च और निम्न वर्ण वाले मनुष्यों की सेवा कर सकने में समर्थ हो सकता हूँ। अतः पूर्वजन्म के कर्मों और परिणामों को समाप्त करना असम्भव है। इस जन्म में जो कर्म कर रहा हूँ वह पूर्व जन्म के ही कर्म का परिणाम है। मोक्ष उसी से प्राप्त होता है जो अपने धर्म का पालन करता है।[31] यह कथन विशेष रूप से वर्ण के सिद्धान्त को स्पष्ट करता है। उपनिषदों में प्रत्येक स्थान पर कर्म को महत्व प्रदान किया गया

---

[27] वही, 188.12
[28] वही, 188.11
[29] वही, 188.12
[30] वही, 188.13
[31] मु0उ0, 1.18 कर्मसु चामृतम्।

है। कर्तव्य के लिए कर्मों का सम्पादन अमृत्व का साधन माना गया है। उपनिषदों के अनुसार ऐसा व्यक्ति ब्रह्मज्ञानियों में वरिष्ठ और श्रेष्ठ होता था। ज्ञानयुक्त कर्म अपूर्णता को दूर कर अमृतत्व को प्राप्त करने वाला माना गया है। याज्ञवल्क्य ऋषि ने जीवन की मीमांसा करते हुए कहा है कि पाप कर्म का फल पाप होता है और पुण्य कर्म का फल पुण्य।[32]

यह प्रमाणित होता है कि वर्ण–व्यवस्था के मूल में कर्म का सिद्धान्त प्रभावशाली था। अर्थात वर्ण–व्यवस्था के प्रारम्भिक स्वरूप का निर्माण कर्म के आधार पर हुआ। विभिन्न वर्णों के कर्म और कर्तव्य मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन को ही नहीं बल्कि पारिवारिक और सामाजिक जीवन को भी उन्नत करते हैं। पुराणों में भी कर्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है तथा यह कहा गया है कि पूर्वजन्म के कर्मों के परिणामस्वरूप ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र उत्पन्न हुए हैं।[33]

महाभारत में स्पष्ट उल्लेख हुआ है कि अच्छे कर्म करने से निम्न वर्ण के व्यक्ति का भी अगले जन्म में उच्च वर्ण में जन्म होता है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा की जाती थी कि वह अपने वर्ण के उपयुक्त जो भी कर्म हों उन्हीं को यथाशक्ति मानकर सुचारु रूप से करे, इसी में कल्याण है। जो व्यक्ति अपने वर्ण के अनुरूप कार्य नहीं करता वह अगले जन्म में उस वर्ण से नीचे वर्ण में जन्म लेता है।[34]

---

[32] बृहद, उ0, 3.2.13 पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन।
[33] ब्रह्मांड पु0, 27.133 वायु पु0 8.140–41
[34] महाभारत का वन पर्व अध्याय, 206 और 207, वही, अनुशासनपर्व 143, 1–47

वर्ण व्यवस्था के कर्म के प्रसंग में महाभारत में कहा गया है कि ब्राह्मणों को उनके आचरणों के आधार पर ही ब्राह्मण कह सकते हैं, और यदि शूद्र सदाचारी हो तो उसे भी ब्राह्मणत्व प्राप्त हो जाता है।[35] इसमें कर्म की महत्वा को प्रदान किया गया है जिससे व्यक्ति सामाजिक कर्तव्यों का निर्वहन करे। युधिष्ठिर ने मत व्यक्त किया है ''वही ब्राह्मण है जिसमें सत्य, दया, क्षमा, सदाचार करुणा और त्याग के गुण विद्यमान हो।[36] जिस शूद्र में ये गुण हों वह शूद्र नहीं है और जिस ब्राह्मण में गुण न हो वह ब्राह्मण नहीं है।[37] वर्ण व्यवस्था में इस सिद्धान्त को गुण और कर्म का महत्व को अधिक महत्व देते हैं।

बौद्ध साहित्य में भी वर्ण–व्यवस्था के सामाजिक–व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। एक स्थान पर यह उल्लेख है कि दो व्यक्तियों के बीच यह विवाद हुआ कि मनुष्य जन्म से ब्राह्मण है या कर्म से। इस विवाद का निपटारा बुद्ध ने किया और यह मत व्यक्त किया कि कर्मप्रधान है। कर्म से ही व्यक्ति ब्राह्मण होता है।[38] इससे पूर्णतः स्पष्ट है कि बुद्ध के मतानुसार मनुष्य की उत्पत्ति में कर्म ही प्रधान आधार था। स्वयं बुद्ध समाज–व्यवस्था को जन्म के आधार पर न मानकर कर्म के आधार पर मानते थे। बुद्ध का विचार कर्मप्रधान था। वे कर्म को श्रेष्ठ मानते थे।

गुण, कर्म का चिन्तन –

भगवद्गीता में भगवान कृष्ण ने वर्णों की उत्पत्ति के विषय में कहा है कि – ''मैंने गुण और कर्म के आधार पर चारों वर्णों की उत्पत्ति की है।[39] गुण के

---

[35] वही अनुशासन पर्व, 143; 55 सर्वोऽयं ब्राह्मणों लोकेवृत्तेन तु विधायते। वृत्तेस्थितस्तुशूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं निपच्छति।

[36] वही वनपर्व 180, 21 सत्यं दानं क्षमाशीलम् अनृशस्यं तपोघृषा।दृश्यन्ते यत्रनागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः

[37] वही 180, 25

[38] वही पृ0 209

[39] गीता, 4.13– चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम्।।

अन्तर्गत सत्व–रज और तम, सत्वगुण (निर्मलता) पवित्र जिसमें सुख और ज्ञान की प्राप्ति होती है। तृष्णा ईर्ष्या को उत्पन्न कर रजोगुण अज्ञान से उत्पन्न होकर व्यक्ति को मोहपाश में बांध लेता है। अतः सत्वगुण सुख, रजोगुण कर्म और तमोगुण अज्ञान का कारण है।[40] गुणात्मक कर्मों के अभिव्यक्ति –फल के विषय में गीता में कहा गया है कि सुकर्म की सात्विकता सुख, ज्ञान और वैराग्य आदि निर्मल फल है, राजस कर्म का फल है दुःख और तामस का अज्ञान।[41] ये तीनो गुण मनुष्य में एक साथ नहीं होते हैं। जब रजस और तमस दबते हैं तब सत्व जब सत्व और तमस निर्बल होते हैं तब रजस और सत्य रुकते हैं, तब तमस ऊपर उठता है। इन तीनो गुणों में सत् गुण ही सर्वोच्च है। तथा इनका अनुसरण करने वाला व्यक्ति मानवीय है। इसलिए सात्विक व्यक्ति उच्च पद प्राप्त करता है, राजसी मध्यम और तामसी अधम।

जो व्यक्ति मान और अपमान में संयम है एवं मित्र और अमित्र के पक्ष में तटस्थ है, वह सम्पूर्ण संवृद्धि से रहित और कर्त्तापन के अभिमान से विमुक्त व्यक्ति गुणातीत कहा जाता है।[42] मनुष्य कर्म का त्याग नहीं कर पाता। त्यागी वही होता है जो कर्म फल का त्याग करता है। इस तरह गुणातीत कर्म का त्याग करने वाला त्यागी है। त्याग का भी लक्षण सात्विक, राजस और तामस होता है।[43] नियत कर्म के तीन प्रेरक तत्त्व माने गए हैं, ज्ञान, ज्ञेय और परिज्ञाता, जिनके संयोग से इसका निर्माण होता है।[44] ज्ञान, कर्म, कर्त्ता, बुद्धि और सुख

---

[40] वही 14.6.9

[41] गीता 14.16 कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विंक निर्मलं फलम्। राजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम्।।

[42] वही, 14.25 मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयो। सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते।।

[43] वही, 18.4

[44] वही, 18.3

इन्हीं त्रिगुण भावों से उद्भूत है। सात्विक ज्ञान के अन्तर्गत विभिन्नता में एकता के भाव की अनुभूति होती है। राजस ज्ञान के अन्तर्गत भिन्न–भिन्न भूतों में विभिन्न अनुभूति होती है, तथा तमस ज्ञान के अन्तर्गत तत्व, युक्ति से रहित होकर विकारशील शरीर को आत्मा समझकर उसमें तल्लीन होना। कर्म करने वाले मनुष्य की बुद्धि भी तीन प्रकार के जिसमें प्रवृत्ति और निवृत्तिमार्ग, कर्तव्य और अकर्त्तव्य, बंधन और मोक्ष जो विवेक को सही समान आ जाती है वह सात्विक बुद्धि मानी गई जिस विवेक के द्वारा मनुष्य धर्म और अधर्म की यथार्थता नहीं जान पाता वह राजसी विवेक कहा गया। तमोगुण से सम्पन्न मनुष्य धर्म को अधर्म समझने की प्रवृत्ति को तथा सम्पूर्ण अर्थो का विपरीत अनुभव करने वाली बुद्धि तामसी कही गयी है।[45] इस प्रकार भारतीय वर्ण–व्यवस्था में कर्म प्रधान व्यक्तित्त्व जीवन की उपलब्धियों को प्राप्त करने में सफल होता है।

रंग सिद्धान्त –

वर्ण का अर्थ रंग भी होता है। वर्ण शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के वृ×k या 'वरी' धातु से हुई है, जिसका अर्थ–चुनना अथवा वरण करना। वर्ण का तात्पर्य है– अपने व्यवसाय से सम्बन्धित। ऋग्वेद में रंग के आधार पर मूलतः 'आर्यवर्ण' एवं दास वर्ण का विभाजन मिलता है। ऋग्वेद समाज के प्रारम्भिक चरण में वर्ण का प्रयोग रंग के अर्थ में हुआ है। ऊषा को अरुण वर्ण तथा रात्रि को कृष्ण वर्ण कहा गया है।

ऋग्वेद[46] में आठवें सूक्त में तीन वर्गों–'ब्रह्म' 'क्षत्र' तथा विश् की श्रीवृद्धि के लिए अश्विनों से प्रार्थना की गई है। वर्ण के दोनों वर्ग आर्य और अनार्य

[45] वही, 18.30, 32
[46] ऋग्वेद, 8.35,16–18

(दास) का वर्ण–अर्थ श्वेत (गौर) और कृष्ण (श्याम) रंग। अतः वर्ण का रंग तत्कालीन युग में बहुत अधिक व्यवहार में था।[47]

यास्क ने वर्णों 'वृणोते' कहकर वर्ण शब्द की व्युत्पत्ति 'वृ×ा्' (ढक लेने के अर्थ में) धातु से निष्पन्न की है। पाणिनि ने धातु 'पाठान्तर्गत' वर्ण वर्णन इत्येके'' और 'वर्ण प्रेरणे' कहकर वर्ण शब्द की सिद्धि वर्ण धातु से की है। ऋग्वेद में जो 'वर्ण' शब्द रंग के रूप में प्रयुक्त हुआ है और रात और दिन का रंग क्रमशः कृष्ण और अरुण बताया गया है। इसी प्रकार दूसरे स्थान पर प्रयुक्त 'द्यावावर्णम चरतः पद की व्याख्या में वर्ण का अर्थ रंग किया जा सकता है। काणे के अनुसार अनेक मंत्रों में वर्ण शब्द रंग अथवा प्रकाश के अर्थ में प्रयुक्त है। किन्तु सायण ने ऋग्वेद 9.104.4 और 105.4 में वर्ण का अर्थ रंग तथा 10.124.7 में वर्ण का अर्थ 'शुक्ल भास्वर रूपम्' किया है– रंगभेद के आधार पर वर्ण–व्यवस्था की उत्पत्ति मानने वाले विद्वानों ने वर्ण शब्द का एक मात्र अर्थ रंग किया है। कालान्तर में वर्ण व्यवस्था पर इन वर्णों के रूप में उल्लेख होने लगा तो चारों वर्णों के लिए भिन्न–भिन्न रंग निश्चित किए गए और उनके सदस्यों को एक दूसरे से विशिष्टता दी जा सके।[48] और रंगों के आधार पर 'आर्य' और 'अनार्य' (दास) की भिन्नता ऋग्वेद के विभिन्न स्थलों पर वर्णित है।

ऋग्वेद (2.12.4) में प्रयुक्त 'दास वर्ण' का अर्थ मैक्डोनल ने दास रंग और अनार्य रंग किया है। काणे ने भी उसका अर्थ 'दास रंग' किया है। साथ–साथ उनके आचार–विचार धर्म व्यवहार और शारीरिक लक्षणों की भिन्नता भी मिलता है। वर्णों के रंग के अर्थ में महाभारत में भी उल्लेख मिलता है। वर्ण व्यवस्था की

---

[47] ऋग्वेद, 1.73.7

[48] घुर्ये कास्ट क्लावस एंड आकुपेशन, पृ0 40

उत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि मनुष्य की त्वचा के विभिन्न रंग वर्णों के सम्बन्ध थे। ब्रह्मा ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की उत्पत्ति की जिनका रंग क्रमशः श्वेत, लोहित (लाल), पीत (पीला) और काला था।[49]

श्वेत रंग का परिचायक सत्वगुण था, लाल रंग का रजोगुण, पीले रंग का रजोगुण और तमोगुण तथा काले रंग का तमोगुण।[50] वेदाभ्यास, तपश्चर्या, ज्ञान शुद्धि इन्द्रिय–निग्रह आदि आचरण सत्वगुण के थे जो ब्राह्मण के गुण थे। विषय भोग में आसक्त रजोगुण से सम्बन्धित कार्य क्षत्रिय के थे। वैश्यों में पीतयुक्त रजस और तमस दोनों गुण सामान्य रूप से थे। प्रमाद, अधैर्य, नास्तिकता तामसी गुणों से युक्त शूद्र वर्ण थे।[51] इस प्रकार वर्ण व्यवस्था में रंगो का विभाजन चातुर्वर्णों की उत्पत्ति गुणों से सम्बन्धित हो गई तथा समाज में रंगो को मूलभूत गुणों से युक्त कर दिया गया।

जन्म सिद्धान्त –

वर्ण–व्यवस्था की उत्पत्ति में शास्त्रकारों ने जन्म को भी माना है। ब्राह्मण के परिवार में जन्म लेने वाला बच्चा अयोग्य और अज्ञानी होकर भी वह पूजनीय ब्राह्मण माना जाता है तथा चारों वर्णों में जन्म के आधार पर सर्वश्रेष्ठ माना जाता था।[52] वर्ण–व्यवस्था को इस प्रकार कर्म न मानकर जन्म को श्रेष्ठ माना गया था। तथा महाकाव्यों के काल तक आते–आते वर्ण–व्यवस्था का आधार मूलतः जन्म हो गया।

---

[49] महाभारत, शान्तिपर्व 188.5 ब्रह्माणानां तु सितो क्षत्रियाणां तु लोहितः। वैश्यानां पीतको वर्ण शूद्रणाभासितस्तया।।

[50] वही 188.5 नीलकण्ठ की टीका, सितःस्वच्छः सत्वगुण प्रकाशात्माशमदमादिस्वभावः। लोहितो रजोगुणः प्रवृत्यात्मा शौर्यतेज आदि स्वभावः।।

[51] मनु0, 12.27.30

[52] आ0ध0सू0, 1.1.15 चत्वारो वर्णा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः। तेषां पूर्य पूर्वो जन्मतः श्रेयान्।

जन्म लेने वाला ब्राह्मण उसी रूप में स्वीकार किया जाता था। जन्म से अलग वर्ण वाला कर्म प्रधान ब्राह्मण वर्ण में नहीं सम्मिलित किया जाता था। वैदिक युग में भी वसिष्ठ और विश्वामित्र के बीच ब्राह्मणत्व और पौरोहित्य को लेकर विचारों का द्वन्द्व तथा आपस में मतभेद संघर्ष चला। वैदिक युग में विश्वामित्र और वसिष्ठ राजा सुदास के पुरोहित बने। तथा विश्वामित्र और वसिष्ठ दोनों एक दूसरे के प्रतिद्वंद्धी थे। उनके प्रतिद्वन्द्धी होने के प्रधान कारण विश्वामित्र का ब्राह्मण कहलाने की इच्छा थी। उनमें शौर्य और तेजस्विता के साथ–साथ अपार बुद्धि–कौशल भी था। अपितु उनके सबसे बड़े बाधक वसिष्ठ थे। वसिष्ठ तेजस्वी ब्राह्मण विद्वान थे। वे विश्वामित्र के अघातों को अपने अध्यात्म तप और तेज से समाप्त कर देते थे। अन्ततोगत्वा विश्वामित्र ब्राह्मणत्व बनने में समर्थ तो अवश्य हो गए, पर प्रत्येक अवसर पर वे वसिष्ठ द्वारा पराजित किए गए। वस्तुतः यह संघर्ष ब्राह्मण–क्षत्रिय दो वर्गों के बीच का संघर्ष था। जो समाज में अपनी–अपनी प्रधानता स्थापित करने के लिए ब्राह्मण और क्षत्रियवर्ग के संघर्ष का पहला चरण था। क्षत्रियों द्वारा ब्राह्मण की आध्यात्मिकता, तपश्चर्या को प्राप्त करने का प्रयास और उसके लिए संघर्ष हुए। विश्वामित्र ने एक स्थान पर स्वयं कहा है कि क्षत्रिय की शक्ति को धिक्कार है। ब्राह्मण की एकमेव दण्ड से मेरे समस्त शस्त्र नष्ट हो गए।[53]

इससे निष्कर्ष निकलता है कि विश्वामित्र अपनी तपश्चर्या और साधना के बल पर ब्राह्मण के सभी कार्य किये अपितु वे ब्राह्मण नहीं कहे जा सकते थे। समाज में वे क्षत्रिय ही माने गए। इस प्रकार विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ग के ही सदस्य माने गए न कि ब्राह्मण वर्ग के। विश्वामित्र कर्म एवं गुण से ब्राह्मण होकर भी,

[53] रामायण, पृ0 56.23

जन्म से क्षत्रिय होने कारण ही कहलाए। इसी प्रकार परशुराम का जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था किंतु व्यवसाय के कारण क्षत्रिय कहलाए। द्रोणाचार्य का कर्म–क्षत्रिय वर्ण का था, किन्तु वे जन्म से ब्राह्मण थे इसलिए द्रोणाचार्य को ब्राह्मण ही माना गया। इस प्रकार तत्कालीन समाज में जो सामाजिक व्यवस्था थी वह जन्म के आधार पर संचालित थी न कि कर्म के आधार पर। इस प्रकार से क्षत्रिय धर्म और कर्म अपनाने वाले ब्राह्मणों के ऐतिहासिक उदाहरण है। पुण्यमित्र शुंग के क्षत्रिय धर्म को अपनाकर शुंग राजवंश की स्थापना की थी। इसी प्रकार सातवाहन राजवंश, वाकाटक राजवंश आदि ब्राह्मण राजवंश थे जिनके संस्थापक ब्राह्मण पुरुष थे।

जन्म और कर्म भावना का वैदिक युग में ऋग्वेद के नवें मण्डल में उल्लेख मिलता है कि मै कवि हूँ। मेरे पिता एक वैद्य थे। मेरी माता आटा पीसती थी। हम सभी धन और पशु की कामना करते थे।[54] इस प्रकार कोई भी मनुष्य जन्म से न होकर कर्म के आधार पर व्यवसाय चुन सकता था।

महाभारत में भी वर्ण–व्यवस्था में जन्म और कर्म के आधार पर उल्लेख किया गया है। कहीं पर जन्म को वर्ण–व्यवस्था माना गया है, और कहीं पर कर्म की प्रधानता स्वीकार्य किया गया है। सत्य, दान, विनय, तप इत्यादि जिसमें गुण विद्यमान हो वह ब्राह्मण है। यदि ये लक्षण शूद्र में हो और ब्राह्मण में न हो तो शूद्र, शूद्र नहीं और ब्राह्मण, ब्राह्मण नहीं है।[55] सत्य, दम, तप, दान, अहिंसा

---

[54] ऋग्वेद, 9, 112.3

[55] महाभारत, शान्तिपर्व 189.4.8 सत्यं दानमथाद्रोहं आनृशस्यं त्रयाघृणा। तपश्च दृश्यते यत्र स ब्राह्मणइतिस्मृतः। शूद्रे चैतद्भवेल्लक्ष्यं द्विजे तच्च नविद्यते। न वैशूद्रोअपेच्छूद्रो ब्राह्मणाा न च ब्राह्मणः।

धर्मनित्यता ही मनुष्य के लिए फलदायक है। जाति अथवा वंश नहीं।[56] वर्ण–व्यवस्था में समाज में व्यक्ति का मान जन्म से न होकर कर्म प्रधान होता था। समाज में व्यक्ति का मूल्यांकन गुणों और कर्मों के आधार पर किया जाता थ। यह सामाजिक व्यवस्था और संगठन को सुनिश्चित स्वरूप प्रदान करने के लिए वर्गगत सामाजिक कर्तव्यों का निर्धारण किया गया। व्यवसाय और कर्म की प्रधानता देते हुए गुणों का भी आदर किया गया। कर्म का महत्व समाज में प्रदान था जिससे सिकन्दर के समय भारतीय सेना में अनेक ब्राह्मण सैनिक रहते थे।[57] महाभारत में ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि वर्ण–व्यवस्था की कठोरता अपेक्षाकृत कम थी। कहीं–कहीं पर जन्म के स्थान पर कर्म के महत्व प्रदान किया जाता था। राजसूय यज्ञ सम्पन्न करते समय युधिष्ठिर ने शूद्र प्रतिनिधियों को भी आमंत्रित किया था।[58] इस समय तक उनके कर्म में भी परिवर्तन आ चुका था, सेवा मात्र ही उनका कर्म नहीं रह गया था, अब वे वाणिज्य और पशुकर्म भी करने लगे थे।[59] इस प्रकार अनेक उदाहरण हैं जिसमें कर्म की महत्ता का पता चलता है। पतंजलि ने शुंगवंशीय ब्राह्मण राज्य की चर्चा की है।[60] मनु ने भी शूद्र राज्य का उल्लेख किया है।[61] मनु ने भी चार वर्णों के अतिरिक्त पांचवे को अस्तित्वहीन माना है।[62] जन्म और कर्म दोनों की भावना के आधार पर समाज को सुगठित करने का प्रयास किया गया था। वर्ण के अन्तर्गत

---

[56] वही, वनपर्व, 81.42–43
[57] महाभाष्य 3.4.10
[58] महाभारत, 233.41
[59] वही 12.292.2.4
[60] वही।
[61] मनु0।
[62] मनु0 104 ब्राह्मणः क्षत्रियों वैश्यस्त्रयो वर्णा–द्विजातयः। चतुर्थएकजातिस्तु शूद्रों नास्ति तुप प×चमः।।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्वाभाविक गुणों के अनुरूप स्थान मिलता है। वर्ण–व्यवस्था के अन्तर्गत कर्म का प्रधान स्थान तथा प्रत्येक वर्ण का अपना विशिष्ट कर्तव्य है। ऐसी स्थिति में वर्ण व्यवस्था के प्रत्येक वर्ण की वृत्तियों के अनुरूप आचार समस्त गुणात्मक कर्म है, जो धर्म–समस्त समाज की विधायक वृत्ति हैं।

******